



Neutral Citation No. - 2015:AHC:188864

ए.एफ.आर.

सुरक्षित

वाद :- रिट - सी संख्या - 33434 वर्ष 2015

याचिकाकर्ता :- वी.के. गुप्ता

प्रतिवादी :- पीठासीन अधिकारी केन्द्रीय सरकार औद्योगिक अधिकरण और 2 अन्य

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता :- अरुण कुमार गुप्ता

प्रतिवादी के अधिवक्ता :- ए.एस.जी.आई, सी.डी.पाल (व्यक्तिगत रूप से), डी के गुप्ता, स्थायी अधिवक्ता

माननीय न्यायमूर्ति पंकज मिथल

याचिकाकर्ता एक अधिवक्ता है। वह विशेष रूप से श्रम एवं औद्योगिक अधिकरण, कानपुर में वकालत करता है।

याचिकाकर्ता ने भारतीय संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत औद्योगिक अधिकरण-सह-श्रम न्यायालय, कानपुर (जिसे आगे अधिकरण कहा जाएगा) द्वारा पारित दिनांक 13.05.2015 के आदेश के खिलाफ यह याचिका दायर की है, जिसके द्वारा प्रार्थनाओं में से एक के संबंध में श्रमिक के आवेदन को अनुमति दी गई है और उसे औद्योगिक मुकदमा संख्या 16/2014, सी.डी. पाल, महासचिव मजदूर संघ बनाम कमांडेंट 508 आर्मी बेस वर्कशॉप, फोर्ट इलाहाबाद में प्रबंधन का प्रतिनिधित्व करने से रोक दिया गया है।

याचिकाकर्ता को इसलिए कार्य से वंचित कर दिया गया है क्योंकि वह आर्मी बेस वर्कशॉप का अधिकारी नहीं है और साथ ही उसके पास न तो कर्मचारी या कर्मचारी संघ की सहमति थी और न ही उक्त मामले में प्रबंधन का प्रतिनिधित्व करने के लिए न्यायालय की अनुमति थी।

श्रम मंत्रालय, भारत सरकार ने श्रमिक संघ के पदाधिकारियों को कथित रूप से अधिक भुगतान किए गए वेतन की वसूली के संबंध में विवाद को संदर्भित किया। औद्योगिक विवाद

अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।



अधिनियम, 1947 (जिसे आगे अधिनियम के रूप में संदर्भित किया गया है) की धारा 10 के तहत दिनांक 21.01.2014 को किया गया उक्त संदर्भ इस प्रकार है:-

“क्या 508 आर्मी बेस वर्कशॉप के प्रबंधन द्वारा अनुलग्नक 1 के अनुसार संघ के पदाधिकारियों को पहले से दिए गए विशेष आकस्मिक अवकाश के विरुद्ध भुगतान किए गए वेतन की वसूली करने की कार्रवाई विधिक और न्यायोचित है? यदि नहीं, तो संबंधित कर्मचारी/संघ किस राहत का हकदार है और किस सीमा तक?”

औद्योगिक मुकदमा संख्या 16/2014 के संदर्भ में, सी.डी. पाल, महासचिव मजदूर संघ बनाम कमांडेंट 508 आर्मी बेस वर्कशॉप, फोर्ट इलाहाबाद पंजीकृत किया गया। उक्त मामले में आर्मी बेस वर्कशॉप के प्रबंधन ने दिनांक 07.04.2014 को याचिकाकर्ता वी.के. गुप्ता, अधिवक्ता (श्रम कानून सलाहकार) और श्री ए.के. गुप्ता, अधिवक्ता को पत्र दिनांक 20.03.2014 के तहत अपनी ओर से उपस्थित होने के लिए अधिकृत किया। दिनांक 08.04.2015 को श्रमिक संघ की ओर से बिना किसी हलफनामे के एक आवेदन प्रस्तुत किया गया कि याचिकाकर्ता वी.के. गुप्ता, जो एक अधिवक्ता हैं, को प्रबंधन की ओर से उपस्थित होने से रोका जाए।

आर्मी बेस वर्कशॉप के प्रबंधन द्वारा दिनांक 13.05.2015 को जवाब दाखिल कर आवेदन का विरोध किया गया, जिसमें तर्क दिया गया कि याचिकाकर्ता पिछले एक वर्ष से कार्यवाही में उनका प्रतिनिधित्व कर रहा है और इस स्तर पर उसे रोका नहीं जा सकता। श्रमिक संघ द्वारा प्रस्तुत आवेदन को हलफनामे द्वारा समर्थित नहीं किया गया है और आवेदन में याचिकाकर्ता की उपस्थिति पर आपत्ति बहुत देरी से उठाई गई है। प्रबंधन के प्रतिनिधि के रूप में अधिवक्ता के पेश होने पर कोई कानूनी रोक नहीं है।

उपर्युक्त आपत्तियों पर विचार करते हुए श्रमिक संघ के आवेदन को दिनांक 13.05.2015 के आदेश द्वारा आंशिक रूप से स्वीकार कर लिया गया है।

मैंने याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री अरुण कुमार गुप्ता और श्रमिक संघ के महासचिव श्री सी.डी. पाल, व्यक्तिगत रूप से उपस्थित, को सुना है।

श्री गुप्ता ने तर्क दिया कि आरोपित आदेश याचिकाकर्ता के अधिवक्ता अधिनियम, 1961 की धारा 29 और 30 तथा भारत के संविधान के अनुच्छेद 19 (1) (जी) में निहित वैधानिक

अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।



और मौलिक अधिकार का उल्लंघन करता है और चूंकि अधिनियम की धारा 36 (4) को अधिकारहीन घोषित किया गया है, इसलिए उन्हें उपरोक्त मामले में उपस्थित होने से वंचित नहीं किया जा सकता है।

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 246 में यह प्रावधान है कि सातवीं अनुसूची की सूची I (संघ सूची) में सूचीबद्ध विषयों पर केवल संसद द्वारा, सूची II (समवर्ती सूची) में सूचीबद्ध विषयों पर संसद और राज्य विधानमंडल द्वारा तथा सूची III (राज्य सूची) में सूचीबद्ध विषयों पर केवल राज्य विधानमंडल द्वारा कानून बनाया जा सकता है।

सूची I की प्रविष्टि 77 में सर्वोच्च न्यायालय के गठन, संगठन, अधिकारिता और शक्तियों (अवमानना सहित), प्रभार्य शुल्क और सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष वकालत करने के हकदार व्यक्तियों के संबंध में संसद द्वारा कानून बनाने का प्रावधान है।

इसी प्रकार, सूची I की प्रविष्टि 78 में उच्च न्यायालयों के गठन, संगठन (अवकाशों सहित) से संबंधित विषयों का प्रावधान है, लेकिन उच्च न्यायालयों के अधिकारियों और कर्मचारियों तथा वहाँ वकालत करने वाले व्यक्तियों से संबंधित प्रावधान इसमें शामिल नहीं हैं।

सूची I की उपरोक्त दो प्रविष्टियों के अतिरिक्त, सूची III की प्रविष्टि 26 भी प्रासंगिक है। यह संसद और राज्य विधानसभाओं को कानूनी, चिकित्सा और अन्य व्यवसायों से संबंधित कानून बनाने का अधिकार देती है।

सूची I और सूची III की उपरोक्त सभी प्रविष्टियों के संयुक्त वाचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि सूची I की प्रविष्टियां 77 और 78, उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालयों को छोड़कर, औद्योगिक अधिकरण सहित किसी अन्य न्यायालय या अधिकरण के समक्ष वकालत करने के हकदार व्यक्तियों के संबंध में संसद द्वारा कानून बनाने की अनुमति नहीं देती हैं, लेकिन सूची III की प्रविष्टि 26 के तहत संसद द्वारा इस संबंध में कानून बनाने की अनुमति है।

ओ.एन. मोहिन्द्र¹ मामले में संविधान पीठ ने टिप्पणी की है कि संविधान की सूची I की प्रविष्टियां 77 और 78, सर्वोच्च न्यायालय और उच्च न्यायालय के गठन और संगठन के अलावा, सर्वोच्च न्यायालय और उच्च न्यायालयों में वकालत करने के हकदार व्यक्तियों के बारे में भी बात करती हैं। हालांकि, उनके संबंध में कानून बनाने की शक्ति सूची III की प्रविष्टि 26 में

अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।



सामान्य शक्ति से संचालित होती है। शेष वकालतकर्ताओं (सर्वोच्च न्यायालय और उच्च न्यायालयों के समक्ष वकालत करने वालों के अलावा) के संबंध में कानून बनाने की शक्ति भी सूची III की प्रविष्टि 26 के अंतर्गत है।

1 एआईआर 1968 सुप्रीम कोर्ट 888 ओ.एन. मोहिन्द्रू बनाम बार काउंसिल ऑफ दिल्ली एवं अन्य

इस पृष्ठभूमि में, यह स्पष्ट है कि अधिवक्ता अधिनियम, 1961 को संविधान की सूची III की प्रविष्टि 26 के तहत कानून बनाने की शक्ति के कथित प्रयोग में संसद द्वारा अधिनियमित किया गया है।

उक्त अधिनियम की धारा 29 में यह प्रावधान है कि अधिवक्ता ही एकमात्र वर्ग है जो कानून के पेशे का वकालत करने का हकदार है। साथ ही उक्त अधिनियम की धारा 30 प्रत्येक अधिवक्ता को सर्वोच्च न्यायालय, अधिकरण या साक्ष्य लेने के लिए कानूनी रूप से अधिकृत व्यक्ति सहित सभी न्यायालयों में, जहां यह अधिनियम लागू होता है, वकालत करने के लिए अधिकृत करती है।

उक्त अधिनियम की धारा 33 में आगे यह प्रावधान है कि कोई भी व्यक्ति किसी न्यायालय में या किसी प्राधिकारी या व्यक्ति के समक्ष तब तक वकालत करने का हकदार नहीं होगा जब तक कि वह अधिवक्ता के रूप में नामांकित न हो।

सुविधा के लिए उपरोक्त प्रावधानों को नीचे पुनः प्रस्तुत किया गया है:

“29. अधिवक्ता ही विधि व्यवसाय करने के लिए पात्र व्यक्तियों का एकमात्र मान्यता प्राप्त वर्ग होगा-इस अधिनियम और इसके अधीन बनाए गए नियमों के उपबंधों के अधीन रहते हुए, नियत दिन से विधि का पेशा अपनाने के लिए हकदार व्यक्तियों का केवल एक वर्ग होगा, अर्थात् अधिवक्ता।

30. अधिवक्ताओं का वकालत करने का अधिकार- इस अधिनियम के उपबंधों के अधीन रहते हुए, प्रत्येक अधिवक्ता जिसका नाम राज्य पंजी में दर्ज है, उन

अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।



राज्यक्षेत्रों में, जिन पर यह अधिनियम लागू होता है, वकालत करने का अधिकार प्राप्त करेगा,-

(i) सर्वोच्च न्यायालय सहित सभी न्यायालयों में;

(ii) किसी अधिकरण या साक्ष्य लेने के लिए कानूनी रूप से अधिकृत व्यक्ति के समक्ष; तथा

(iii) किसी अन्य प्राधिकारी या व्यक्ति के समक्ष जिसके समक्ष ऐसे अधिवक्ता किसी कानून के तहत या उसके तहत अभ्यास करने के हकदार हैं।”

33. केवल अधिवक्ता को ही अभ्यास करने का अधिकार- इस अधिनियम या तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि में अन्यथा उपबंधित के सिवाय, कोई भी व्यक्ति नियत दिन को या उसके पश्चात् किसी न्यायालय में या किसी प्राधिकारी या व्यक्ति के समक्ष तब तक वकालत करने का हकदार नहीं होगा जब तक कि वह इस अधिनियम के अधीन अधिवक्ता के रूप में नामांकित न हो।

कानून के उपरोक्त प्रावधान केवल विधिवत् नामांकित अधिवक्ताओं को ही सर्वोच्च न्यायालय, उच्च न्यायालयों और अधिकरण सहित सभी न्यायालयों या साक्ष्य लेने के लिए कानूनी रूप से अधिकृत व्यक्ति के समक्ष वकालत करने की अनुमति देते हैं। इन प्रावधानों के मद्देनजर याचिकाकर्ता जो एक वकील है, अधिकरण के समक्ष वकालत करने के लिए अधिकृत है।

याचिकाकर्ता के लिए अधिकरण के समक्ष वकालत करने में कठिनाई इसलिए उत्पन्न होती है क्योंकि अधिनियम की धारा 36 (3) और (4) में यह प्रावधान है कि एक अधिवक्ता अधिकरण के समक्ष प्रबंधन का प्रतिनिधित्व केवल कामगारों/संघ की सहमति और न्यायालय की अनुमति से ही करेगा।

अधिनियम की धारा 36 (3) और (4) इस प्रकार है:

“36.

(1)

अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।



(2).....

(3) किसी विवाद का कोई भी पक्षकार इस अधिनियम के अंतर्गत किसी सुलह कार्यवाही में या किसी न्यायालय के समक्ष किसी कार्यवाही में विधि व्यवसायी द्वारा प्रतिनिधित्व पाने का हकदार नहीं होगा।

(4) किसी भी कार्यवाही में [श्रम न्यायालय, अधिकरण या राष्ट्रीय अधिकरण के समक्ष] विवाद के एक पक्ष का प्रतिनिधित्व कार्यवाही के अन्य पक्षों की सहमति से और [श्रम न्यायालय, अधिकरण या राष्ट्रीय अधिकरण की अनुमति से, जैसा भी मामला हो] एक कानूनी व्यवसायी द्वारा किया जा सकता है।”

उपर्युक्त प्रावधानों के मद्देनजर, अधिकरण के समक्ष उपस्थित होने के लिए प्रबंधन के कर्मचारी या स्टाफ के अलावा किसी अन्य अधिवक्ता की नियुक्ति दो शर्तों के पूरा होने पर ही की जा सकती है, अर्थात (i) दूसरे पक्ष की सहमति; और (ii) न्यायालय की अनुमति।

उपरोक्त प्रावधान अधिवक्ताओं को अधिकरण के समक्ष उपस्थित होने से पूरी तरह से नहीं रोकता है। यह उपरोक्त दो शर्तों के अधीन अधिकरण के समक्ष विधिक व्यवसायी द्वारा प्रतिनिधित्व की अनुमति देता है। उक्त शर्तों को लागू करना अधिवक्ताओं के किसी भी न्यायालय, प्राधिकरण या व्यक्ति के समक्ष प्रैक्टिस करने के सामान्य अधिकार पर प्रतिबंध लगाने के समान है। इस प्रकार लगाए गए प्रतिबंध भारतीय संविधान के अनुच्छेद 19(1)(जी) द्वारा गारंटीकृत अधिवक्ताओं के कानून का अभ्यास करने के अधिकार पर कोई असर नहीं डालते हैं।

पारिवारिक न्यायालय अधिनियम, 1984 की धारा 13 के रूप में कुछ इसी प्रकार का प्रावधान मौजूद है, जिसके तहत पक्षकारों को विधि व्यवसायी द्वारा प्रतिनिधित्व करने की अनुमति नहीं है, लेकिन यदि पारिवारिक न्यायालय इसे आवश्यक समझे तो उन्हें कानूनी विशेषज्ञों की सहायता लेने की अनुमति दी जा सकती है। यह माना गया कि यह अधिवक्ता की नियुक्ति पर पूरी तरह से प्रतिबंध नहीं लगाता है और पीठासीन अधिकारी के विवेक पर कानूनी विशेषज्ञों द्वारा पक्षों का प्रतिनिधित्व किया जा सकता है और इस तरह विधि व्यवसायी पर पारिवारिक न्यायालय के समक्ष उपस्थित होने से कोई पूर्ण या सम्पूर्ण प्रतिबंध नहीं है। तदनुसार, उपरोक्त अधिनियम की धारा 13 को विभिन्न उच्च न्यायालयों द्वारा अमान्य नहीं माना गया।

अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।



अधिवक्ता अधिनियम, 1961 द्वारा प्रदत्त वकालत का अधिकार किसी वादी को किसी विशेष अधिवक्ता द्वारा प्रतिनिधित्व किए जाने का अधिकार प्रदान नहीं करता है। यह केवल यह पूर्व-धारणा करता है कि यदि आवश्यक हो तो वादी को अधिवक्ता द्वारा प्रतिनिधित्व किए जाने का अधिकार है।² वकालत करने का अधिकार एक पूर्ण अधिकार नहीं है, बल्कि केवल प्रकृति में प्रतिबंधित है और इस तरह के अधिकार पर सीमाएं हमेशा विधि व्यवसायियों के लिए पोशाक निर्धारित करके या किसी अन्य तरीके से लगाई जा सकती हैं।³

2 एआईआर 1968 इलाहाबाद.270 जोनल मैनेजर, एलआईसी बनाम सिटी मंसिफ, मेरठ

3 एआईआर 1974 इलाहाबाद 133 प्रयाग दास बनाम सिविल जज, बुलन्दशहर

उपर्युक्त के आलोक में, अधिनियम की धारा 36(4) द्वारा लगाए गए दो प्रतिबंध अधिवक्ताओं को अधिकरण के समक्ष उपस्थित होने से पूरी तरह से बाहर नहीं करते हैं। दूसरे, यह किसी व्यक्ति के वकालत करने के मौलिक अधिकार का भी उल्लंघन नहीं करता है। कानून का वकालत करने का अधिकार रखने वाला व्यक्ति सर्वोच्च न्यायालय, उच्च न्यायालय, अधिकरण आदि सहित किसी भी न्यायालय में इसका वकालत कर सकता है, लेकिन वकालत के ऐसे अधिकार का यह अर्थ नहीं है कि वह किसी विशेष मामले में उपस्थित होने का हकदार है। यदि उसे किसी मामले में उपस्थित होने की अनुमति नहीं दी जाती है, तो इसका अर्थ यह नहीं है कि उसके किसी मौलिक या वैधानिक अधिकार का उल्लंघन होता है।

रे लिली इसाबेल थॉमस⁴ मामले में सात न्यायाधीशों की संविधान पीठ सर्वोच्च न्यायालय नियम, 1950 की वैधता पर विचार कर रही थी, जिसमें प्रतिनिधित्व का अधिकार केवल कुछ विशेष वर्ग के अधिवक्ताओं को दिया गया था। सर्वोच्च न्यायालय के नियमों के आदेश 4 के नियम 16 और 17 के संबंध में अधिवक्ता अधिनियम के प्रावधानों और सूची 1 की प्रविष्टि 77 और 78 के अंतर्गत संसद की विधायी शक्तियों पर विचार करते हुए माननीय न्यायाधीशों ने माना कि सर्वोच्च न्यायालय के नियमों के आदेश 4 के नियम 16 और 17 द्वारा अधिवक्ताओं के एक निश्चित वर्ग को प्रतिनिधित्व के अधिकार को प्रतिबंधित करने का कोई प्रश्न ही नहीं उठता है जो संसद द्वारा बनाए गए कानून के विपरीत है। सर्वोच्च न्यायालय अपने नियमों के द्वारा व्यक्तियों को उसके समक्ष वकालत करने का अधिकार देने वाली योग्यताएं निर्धारित करने का

अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।



प्रावधान कर सकता है और संसद की शक्ति तथा न्यायालय की नियम बनाने की शक्ति के बीच टकराव का कोई प्रश्न ही नहीं उठता।

इसी तरह, महाराष्ट्र अनुसूचित जनजातियों को भूमि की बहाली अधिनियम, 1975 की धारा 9ए के तहत अधिनियम के तहत कार्यवाही में गैर-आदिवासियों की ओर से अधिवक्ताओं के पेश होने पर रोक लगा दी गई। **लिंगप्पा पोचन्ना अपीलवार**⁵ में अधिवक्ता अधिनियम की धारा 30 से निपटने के लिए सर्वोच्च न्यायालय की तीन न्यायाधीशों की पीठ ने माना कि ऐसा निषेध केवल एक प्रतिबंध है और संविधान के अनुच्छेद 19(1)(जी) के तहत एक अधिवक्ता के मौलिक अधिकार का उल्लंघन नहीं करता है।

4 एआईआर 1964 सुप्रीम कोर्ट 855 रे लिली इसाबेल थॉमस

5 एआईआर 1985 सुप्रीम कोर्ट 389 लिंगप्पा पोचन्ना अपीलवार बनाम महाराष्ट्र राज्य और अन्य

अधिवक्ता अधिनियम की धारा 36(4) की तुलना में अनुच्छेद 19(1)(जी) और धारा 30/33 के तहत अधिवक्ताओं के कानून का वकालत करने के अधिकार के संबंध में वास्तविक विवाद **पारादीप पोर्ट ट्रस्ट**⁶ में सर्वोच्च न्यायालय की तीन न्यायाधीशों की पीठ के समक्ष विचार के लिए आया था। उनके माननीय न्यायाधीशों ने माना कि अधिवक्ता अधिनियम के तहत अधिवक्ता का अधिकार सामान्य प्रकृति का है और वह अधिनियम की धारा 36 के विशेष कानून पर हावी नहीं हो सकता। एक अधिवक्ता सीधे तौर पर विरोधी पक्ष की सहमति और अधिकरण की अनुमति के बिना औद्योगिक अधिकरण के समक्ष पेश नहीं हो सकता।

हाल ही में **हाइजीनिक फूड्स**⁷ में सुप्रीम कोर्ट का फैसला एक डिवीजन बेंच द्वारा दिया गया है। इसने प्रथम दृष्टया माना है कि अधिनियम की धारा 36(4) अधिवक्ताओं को अधिकरण के समक्ष पेश होने से रोकती है जो संविधान के अनुच्छेद 14 और 19(जी) का उल्लंघन है और असंवैधानिक है। यह निर्णय केवल प्रथम दृष्टया राय व्यक्त करता है, अंतिम और निर्णायक नहीं। डिवीजन बेंच द्वारा व्यक्त की गई उक्त प्रथम दृष्टया राय **पारादीप पोर्ट ट्रस्ट (सुप्रा)** में तीन न्यायाधीशों की बेंच की पूर्वोक्त निर्णायक राय और ऊपर संदर्भित दो अन्य निर्णयों के विपरीत है। इसलिए, इसमें व्यक्त की गई राय बाध्यकारी नहीं है।

अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।



इसी प्रकार, इस न्यायालय के विद्वान एकल न्यायाधीश (बाद में सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीश) द्वारा आई.सी.आई. इंडिया लिमिटेड ⁸ में व्यक्त की गई राय कि अधिनियम की धारा 36(4) भारत के संविधान के अनुच्छेद 14 और 19(1)(जी) का उल्लंघन करती है और इसलिए अधिकारहीन है, स्वीकार्य भी नहीं है क्योंकि यह ऊपर व्यक्त की गई राय और ऊपर संदर्भित सर्वोच्च न्यायालय के तीन निर्णयों के विपरीत है।

यदि मैं एच.एस. श्रीनिवास राघवाचार ⁹ आदि के मामले में सर्वोच्च न्यायालय के एक अन्य निर्णय का उल्लेख न करूं तो यह मेरे कर्तव्य में चूक होगी। उक्त मामला कर्नाटक भूमि सुधार अधिनियम, 1962 से संबंधित था। इसने एक संशोधन के ज़रिए विधि व्यवसायियों को भूमि अधिकरण के समक्ष पेश होने से प्रतिबंधित कर दिया। इस प्रावधान को असंवैधानिक और अधिवक्ता अधिनियम की धारा 30 का उल्लंघन करने वाला माना गया। उपर्युक्त निर्णय स्पष्ट रूप से अलग है क्योंकि उपर्युक्त अधिनियम के तहत भूमि अधिकरण के समक्ष अधिवक्ताओं के पेश होने के अधिकार पर पूर्ण और सम्पूर्ण प्रतिबंध लगाया गया था।

6 (1977) 2 सुप्रीम कोर्ट केस 339 पारादीप पोर्ट ट्रस्ट, पारादीप बनाम वर्कमेन

7. 2011 कानूनी मुकदमा (एससी) 701 हाइजीनिक फूड्स बनाम जसबीर सिंह और अन्य

8. 1992 एलएलआर 477 आईसीआई इंडिया लिमिटेड बनाम पीठासीन अधिकारी, श्रम न्यायालय (IV) और अन्य

9 एआईआर 1987 सुप्रीम कोर्ट 1518 एच.एस. श्रीनिवास राघवाचार आदि बनाम कर्नाटक राज्य एवं अन्य

इस मुद्दे पर सर्वोच्च न्यायालय के उपरोक्त संदर्भित निर्णयों के मद्देनजर मोहन मधुकर सुदामे¹⁰ में बॉम्बे उच्च न्यायालय का निर्णय भी याचिकाकर्ता के लिए कोई सहायता नहीं करता है। उपरोक्त निर्णय में बॉम्बे उच्च न्यायालय की डिवीजन बेंच ने फैसला सुनाया कि महाराष्ट्र विश्वविद्यालय अधिनियम, 1994 की धारा 64, जो विधि व्यवसायियों को विश्वविद्यालय और कॉलेज अधिकरण के समक्ष उपस्थित होने से रोकती है, अमान्य है और अधिवक्ता अधिनियम की धारा 30 के प्रतिकूल है। वर्तमान मामले में इसका कोई अनुप्रयोग नहीं है क्योंकि अधिनियम



की धारा 36(4) अधिवक्ताओं को अधिकरण के समक्ष उपस्थित होने से पूरी तरह से बाहर नहीं करती है। यह बहिष्कार सीमित है और इसमें निर्धारित दो शर्तों के अधीन है।

10 मोहन मधुकर सुदामे बनाम. महाराष्ट्र राज्य और अन्य एआईआर 2012 बॉम्बे 89

इस मामले में, याचिकाकर्ता आर्मी बेस वर्कशॉप के स्टाफ में नहीं है या इसके प्रबंधन का हिस्सा नहीं है। इसलिए, आमतौर पर वह अधिकरण के समक्ष प्रबंधन का अधिकृत प्रतिनिधि नहीं हो सकता। यहां तक कि यदि वह प्रबंधन का कानूनी सलाहकार है और आवश्यकता पड़ने पर प्रबंधन को सलाह देता है, तो भी उसे स्टाफ का सदस्य नहीं माना जा सकता, क्योंकि अभिलेख में ऐसा कुछ भी नहीं है, जिससे यह साबित हो सके कि उसे अन्य कर्मचारियों की तरह नियमित वेतन दिया जाता है। कानूनी सलाहकार के रूप में उनके द्वारा दी गई सेवाएँ उनके पेशेवर कर्तव्यों की प्रकृति में हैं, जिसके लिए वे पारिश्रमिक के हकदार हैं, लेकिन नियमित आधार पर वेतन के नहीं। इसलिए, वे प्रबंधन का हिस्सा नहीं हैं और जब तक वे अधिनियम की धारा 36 की शर्तों को पूरा नहीं करते, तब तक प्रबंधन का प्रतिनिधित्व नहीं कर सकते।

इसका अर्थ यह है कि अधिवक्ता के रूप में उनकी नियुक्ति दूसरे पक्ष की सहमति और न्यायालय की अनुमति से होनी चाहिए।

याचिकाकर्ता ने 07.04.2014 को आर्मी बेस वर्कशॉप की ओर से उपस्थिति दर्ज कराई थी। उनकी उपस्थिति पर पहली बार 08.04.2015 को आपति उठाई गई थी। प्रबंधन का प्रतिनिधित्व करने के उनके अधिकार पर पहले कभी कोई आपति नहीं की गई थी, न तो उनके उपस्थित होने के समय और न ही उसके बाद लगभग एक वर्ष की अवधि तक।

फ्रांसिस गोमेज़ और अन्य बनाम अध्यक्ष, तिरुवनंतपुरम शॉप्स और वाणिज्यिक प्रतिष्ठान कर्मचारी संघ और अन्य 1999 (81) एफएलआर में, केरल उच्च न्यायालय के माननीय न्यायमूर्ति ने माना कि यदि किसी पक्ष की ओर से अधिवक्ता द्वारा उपस्थिति दर्ज कराई जाती है और दूसरा पक्ष पहले पोस्टिंग के दिन ही उस पर आपति उठाने में विफल रहता है तो अधिवक्ता अधिनियम की धारा 36(4) के तहत एक निहित सहमति है जिसे बाद में वापस नहीं लिया जा सकता है।

अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।



उपर्युक्त निर्णय के मद्देनजर, अधिकरण के समक्ष आर्मी बेस वर्कशॉप का प्रतिनिधित्व करने के लिए याचिकाकर्ता की नियुक्ति पर निहित सहमति हो सकती है, लेकिन न्यायालय की अनुमति प्राप्त करने की अन्य शर्त अभी भी पूरी नहीं हुई है।

अधिनियम की धारा 36 को सरलता से पढ़ने पर पता चलता है कि अधिकरण के समक्ष किसी पक्ष का प्रतिनिधित्व करने के लिए अधिवक्ता नियुक्त करने के लिए दो शर्तों को पूरा करना आवश्यक है, अर्थात् श्रमिक या श्रमिक संघ की सहमति और न्यायालय की अनुमति।

यह सच है कि वर्तमान मामले में अधिकरण ने आर्मी बेस वर्कशॉप को अधिवक्ता नियुक्त करने की अनुमति नहीं दी है तथा उसे अधिवक्ता, विशेषकर याचिकाकर्ता, द्वारा प्रतिनिधित्व करने की कोई अनुमति नहीं दी है।

उपरोक्त स्थिति में, चूंकि याचिकाकर्ता अधिनियम की धारा 36 के तहत निर्धारित दोनों अनिवार्य शर्तों को पूरा करने में विफल रहा है, इसलिए अधिकरण ने उसे आर्मी बेस वर्कशॉप के प्रतिनिधि के रूप में स्वीकार न करके तथा उसे उपरोक्त मामले में उपस्थित होने से रोककर कोई गलती नहीं की है।

यह दलील कि याचिका पर इस तरह से रोक लगाना अधिवक्ता अधिनियम की धारा 29/30 तथा संविधान के अनुच्छेद 19(1)(जी) का उल्लंघन है, कोई आधार नहीं रखती।

अनुच्छेद 19(1)(जी) वकालत और पेशा करने या कोई व्यवसाय, व्यापार या कारोबार करने के अधिकार की गारंटी देता है। याचिकाकर्ता के इस अधिकार का उल्लंघन या उस पर कोई असर नहीं पड़ता है, जो केवल उसे वैधानिक शर्तों को पूरा न करने के कारण किसी विशेष मामले में पेश होने से रोकता है। यह याचिकाकर्ता को कहीं भी कानून का अभ्यास करने से नहीं रोकता है, यहां तक कि अधिकरण के समक्ष भी नहीं।

अधिवक्ता अधिनियम की धारा 30/33 के तहत अधिवक्ताओं को अधिकरण सहित सभी न्यायालयों में वकालत करने का जो अधिकार दिया गया है, वह भी इस विवादित आदेश से प्रभावित नहीं होता है, क्योंकि यह उन्हें किसी भी न्यायालय या अधिकरण के समक्ष पेश होने से नहीं रोकता है। किसी भी अधिवक्ता को किसी विशेष मामले में पेश होने का कोई अधिकार नहीं



है और किसी अधिवक्ता को एक मामले से वंचित करना उसके वकालत करने के अधिकार का उल्लंघन नहीं करता है।

उपरोक्त तथ्यों और परिस्थितियों में याचिकाकर्ता पीड़ित पक्ष नहीं हो सकता।

पीड़ित पक्ष अगर होता तो आर्मी बेस वर्कशॉप होता, लेकिन उसने इसकी शिकायत नहीं की और यह याचिका दायर नहीं की, जिसका मतलब है कि अगर उसे अधिकरण के समक्ष याचिकाकर्ता द्वारा प्रतिनिधित्व करने की अनुमति नहीं दी जाती है तो उसे कोई आपत्ति नहीं है। इन परिस्थितियों में याचिकाकर्ता अकेले ही विवादित आदेश के खिलाफ इस अदालत के रिट क्षेत्राधिकार का आह्वान करने के लिए अधिकृत नहीं है।

उपरोक्त के मद्देनजर, मुझे याचिका में कोई योग्यता नहीं दिखती है और इसे न्यायाधिकरण को निर्देश देते हुए खारिज किया जाता है कि यदि संभव हो तो यह आदेश उसके समक्ष प्रस्तुत करने के तीन महीने के भीतर कार्यवाही शीघ्रता से पूरी की जाए।

आदेश दिनांक :- 22.12.2015

पीयूष